८—मेत्त-सुत्तं (१, ८)

करणीयमत्थकुसलेन, यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।
सक्को उजू च सूजू[1] च, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥ १ ॥
सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।
सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥ २ ॥
न च खुद्दं समाचरे किञ्चि, येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं ।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता[2] भवन्तु सुखितत्ता ॥ ३ ॥
ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा अनवसेसा ।
दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला ॥ ४ ॥
दिट्ठा वा[3] येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे ।
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ५ ॥
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि नं कञ्चि[4] ।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥ ६ ॥
माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे ।
एवम्पि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥
मेत्तं च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं ।
उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥ ८ ॥
तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो[5] ।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥ ९ ॥
दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो ।
कामेसु विनेय्य[6] गेधं, न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति ॥ १० ॥

मेत्तसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. सुहुजू—म०, स्या० २. सब्बसत्ता—म० । ३. व—म० । ४. न कञ्चि—म०; नं कञ्चि—स्या० । ५. विगतमिद्धो—म० । ६. विनय—म० ।

८—मेत्तसुत्त (१, ८)

[सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना 'ब्रह्मविहार' कहलाता है ।]

शान्ति-पद की प्राप्ति चाहने वाले, कल्याण-साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने । उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ॥ १ ॥

वह सन्तोषी हो, सहज ही-पोष्य हो और सादा जीवन बिताने वाला हो । उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों । वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ॥ २ ॥

ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे, जिसके लिए दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें । (और इस प्रकार मैत्री करे-) सब प्राणी सुखी हों, क्षेमी हों और सुखितात्मा हों ॥ ३ ॥

जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान्, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वाले जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें ॥ ४-५ ॥

एक दूसरे की वंचना न करे । कभी किसी का अपमान न करे । वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करे ॥ ६ ॥

माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम-भाव बढ़ावे ॥ ७ ॥

बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे ॥ ८ ॥

खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते, जब तक जाग्रत रहे, तब तक इस प्रकार की स्मृति बनाये रहे । इसी को ब्रह्मविहार कहते हैं ॥ ९ ॥

ऐसा नर किसी मिथ्यादृष्टि में न पड़े, शीलवान् हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो काम-तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

मेत्तसुत्त समाप्त ।